

माहेश्वर सूत्र और उनकी वैज्ञानिकता

राधेश्याम चतुर्वेदी

विश्व की सत्चित् सत्ता अर्थात् परमशिव जब आनन्द से उच्छलित अथवा क्रोध से उद्रिक्त होते हैं तब नृत्य करते हैं। आनन्दोच्छलता सृष्टि के प्रारंभ का और क्रोधोद्रेक संहार का संकेतक होता है। सृष्टि के कर्ता ब्रह्मा के चार मानसपुत्र-सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार, परमज्ञान की प्राप्ति के लिये तप कर रहे थे। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर संसार से उनका उद्धार करने के लिए भगवान् शिव ने नृत्त^१ के अन्त में चौदह बार डमरू बजाया। इस डमरू ध्वनि से तपस्यारत सनक आदि को ज्ञान हो गया और वे मुक्त हो गये। इस विषय को नन्दिकेश्वर कारिका में कहा गया है-

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम् ॥
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शो शिवसूत्रजालम् ॥

सनक आदि का उद्धार कैसे हुआ- इसकी चर्चा बाद में की जाएगी। पहले कारिका में उद्धृत 'विमर्शो शिवसूत्रजालम्' पर विचार किया जाता है। भगवान् नटराजराज के द्वारा डमरू बजाये जाने पर जो ध्वनि उत्पन्न हुई उस पर विचार किया गया तो दिव्य द्रष्टा महर्षि पाणिनि के मानस पटल पर चौदह सूत्र स्फुरित हुए। ये सूत्र हैं- १) अइउण् २) ऋलृक् ३) एओङ् ४) ऐऔच् ५) हयवर्ट् ६) लण् ७) जमङणनम् ८) झभञ् ९) घढधष् १०) जबगडदश् ११) खफछठथचटतव् १२) कपय् १३) शषसर् और १४) हल।

ये सूत्र संस्कृत भाषा की वर्णमाला हैं। इन सूत्रों में सबसे पहले स्वरों का संयोजन है और बाद में व्यञ्जनों का। विश्व की किसी भी वर्णमाला में ऐसा स्वर-व्यञ्जन क्रम दिखलायी नहीं देता। इसका कारण यह है कि बिना स्वरों के व्यञ्जनों का उच्चारण संभव नहीं होता, इसलिये महर्षि पाणिनि ने पहले स्वरों का परिचय कराया। उनमें भी 'अ' 'इ' 'उ' 'ऋ' - ये चार स्वर अपने दीर्घ और प्लुत स्वरूपों के भी परिचायक हैं अर्थात् एक अ 'अ' आ आ ३ तीन का वाचक है। इसीप्रकार 'इ' 'उ' 'ऋ' भी हैं।

व्यञ्जनों में उच्चारण की दृष्टि से प्रमुख स्थान कण्ठ का है अतः स्वरों के बाद 'ह' का उल्लेख किया गया। फिर यवरल को कहा गया क्योंकि ये चार वर्ण मुख के अन्दर विभिन्न अंगों से उच्चरित होते हैं।

इस क्रम में फिर कवर्ण आदि पाँच वर्णों के पञ्चम वर्णों को कहा गया। तत्पश्चात् चतुर्थ वर्णों को फिर तृतीय वर्ण 'ज' आदि और फिर द्वितीय वर्ण 'ख' आदि और पुनः प्रथम वर्ण 'च' आदि को कहा गया। विचित्र यह है कि पञ्चम वर्णों को जिस क्रम से कहा गया शेष चतुर्थ तृतीय द्वितीय और प्रथम वर्णों को भी उसी क्रम से निर्दिष्ट किया गया है।

सूत्रों के अन्त में जो 'ण्' 'क्' आदि हल् वर्ण दिये गये हैं उनका उपयोग प्रत्याहार के लिये होता है। स्पष्टार्थ यह है कि मात्र दो अक्षरों के उच्चारण से अनेक अक्षरों का बोध कराने के लिये इन हल् वर्णों की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये यदि हमें स्वरों और व्यञ्जनों का एक साथ बोध कराना है तो मात्र 'अ' 'इ' 'उ' 'ण्' सूत्र का 'अ' और हल् सूत्र का 'ल्' लेने पर 'अल्' प्रत्याहार बनेगा जो पूरी वर्णमाला का बोध करा देगा। इसी प्रकार 'अच्' प्रत्याहार पूरे स्वरों का और 'हल्' प्रत्याहार संपूर्ण व्यञ्जन वर्णों का ज्ञान कराता है। इन प्रत्याहारों का मुख्य प्रयोग महर्षि पाणिनि ने अपने अष्टाध्यायी सूत्रों में किया है। यदि प्रत्याहार की अवधारणा महर्षि के मन में न आयी होती तो सूत्रों की रचना दुष्कर अथवा असंभव थी। अष्टाध्यायी के बत्तीस पादों में प्रायः सर्वत्र प्रत्याहार वाले सूत्र दृष्ट होते हैं। उदाहरण के लिए प्रथम सूत्र वृद्धिरादैच् में 'ऐच्' पद का प्रयोग हुआ है। यह पद प्रत्याहार वाला है जिससे 'ऐ' और 'औ' स्वरों का बोध होता है। सूत्रों में इसीप्रकार इकोयणचि, अकः सवर्णे दीर्घः झलां जश् झशि आदि सर्वत्र प्रत्याहारों का ही प्रयोग दृश्यमान होता है।

आज से प्रायः सौ साल पहले काशी में एक विद्वान् हुआ करते थे। नाम था पं० शिवकुमार शास्त्री। काशी की विद्वन्मण्डली उन्हें साक्षात् शिव कहा करती थी। महावैय्याकरण पंडित शिवकुमार शास्त्री जी का मत एवं वचन था- छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति। अर्थात् माहेश्वर सूत्र का महत्त्व वेद मन्त्रों के समान है। तात्पर्य यह है कि वैदिकमन्त्रों के स्वाध्याय से जो पुण्य मिलता है या जो अयुदय प्राप्त होता है वही माहेश्वर सूत्रों के स्वाध्याय से भी प्राप्त होता है। पंडित जी का यह कथन निराधार नहीं था। उसके पीछे सूत्रों की सङ्घटना की महत्ता थी। व्यञ्जनों का उच्चारण स्वरों के बिना नहीं हो सकता, अतः पहले स्वरों का उपक्रम हुआ। उनमें भी सबसे पहले ह्रस्व स्वरों का तत्पश्चात् दीर्घ स्वरों का। जहाँ तक व्यञ्जनों का प्रश्न है तो उनमें सबसे पहले 'ह' का उच्चारण है, शषसह ये महाप्राण हैं अर्थात् इनके उच्चारण में प्राणवायु

अधिक गुरुता के साथ काम करता है। अतः सबसे पहले 'ह' फिर यवरल अल्पप्राण का क्रम है। ये कोमल वर्ण हैं। तत्पश्चात् अल्प प्राण वाले अनुनासिक वर्ण हैं। अनुनासिक का महत्त्व अत्यधिक है। ऐसी मान्यता है कि अनाहत नाद का स्वरूप विन्दु जैसा है। अनुनासिक वर्णों के अनन्तर अति महाप्राण वर्णों 'झ' 'भ' 'घ' 'ढ' 'ध' का संघटन है। ये कठोर वर्ण हैं। तत्पश्चात् 'च' 'ट' 'त' 'क' 'प' कोमल वर्ण हैं। उसके अनन्तर 'श' 'ष' 'स' कोमल वर्ण और अन्त में कठोर वर्ण 'ह' है। इस प्रकार कोमल फिर कठोर फिर कोमल फिर कठोर के क्रम से सूत्रों का डमरू ध्वनि की लय में आरोह-अवरोह के साथ उच्चारण करने पर अ युदय निःश्रेयस् दोनों की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार वैदिक मन्त्रों के उच्चारण में उदात्त अनुदात्त और स्वरित का महत्त्व है, उसी प्रकार माहेश्वर सूत्रों में महाप्राण अर्थात् कठोर एवं अल्पप्राण अर्थात् कोमल वर्णों के आरोह-अवरोह पूर्वक उच्चारण का महत्त्व है।

*मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति*

पातञ्जल महाभाष्य में उद्धृत यह वचन स्वर (उदात्त अनुदात्त स्वरित) की महत्ता पर प्रकाश डालता है। माहेश्वर सूत्रों के विषय में भी ऐसा ही समझने की आवश्यकता है।

वैदिक मन्त्रों के विषय में यह वचन है कि वह सर्वज्ञानमय है। इसका तात्पर्य यह है कि मन्त्रों के अनेक अर्थ होते हैं। उनका वर्गीकरण वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ, निगर्भार्थ, स प्रदायार्थ आदि के रूप में माना गया है। चूँकि माहेश्वर सूत्रों की भी मान्यता छन्दोवत् है इसलिये उनके भी अक्षरों के अनेक व्यायार्थ तत्तत् स प्रदाय वालों ने निकाले हैं। वैष्णव तन्त्र के अनुसार 'अ' 'इ' 'उ' 'ण्' सूत्र का अर्थ है- 'अ'= वासुदेव विष्णु, 'इ'= माया को, 'उ'= व्यास कर, 'ण्'= वर्तमान है। 'अ' 'इ' आदि वर्णों के तत्तत् अर्थ एकाक्षरी कोष में मिलते हैं।

इस प्रकार चौदह सूत्रों में स पूर्ण विश्व की सृष्टि प्रलय आदि स पूर्ण व्यवस्था का सांकेतिक वर्णन निहित है। बहुत स भव है कि सनक सनन्दन आदि को विश्व का इसी प्रकार का रहस्य ज्ञात हुआ हो और वे संसार को मायीय मानकर इसकी निस्सारता को जान गये हों और मुक्त हो गये हों।

शैवतन्त्र भी अकारादि वर्णमाला से इसी प्रकार का अर्थ निकालता है। उसके अनुसार 'अ'= अनुत्तरसर्वोच्च सत्ता-परमशिव, 'आ'= आनन्द, 'इ'= इच्छा, 'ई'= ईषणा, 'उ'= उन्मेष, 'ऊ'= ऊर्मि इत्यादि है। व्यायार्थ- 'अ' अर्थात् परमशिव जब 'आ' अर्थात् आनन्द से उच्छलित होता है तब उसके अन्दर 'इ' अर्थात् इच्छा जाग्रत होती है कि 'एकोऽहं बहु स्याम प्रजायेय' फिर 'ई' ईषणा अर्थात् स पूर्ण विश्व की सृष्टि की तीव्र भावना उसमें उत्पन्न होती है जिसके फलस्वरूप उस परमत्त्व में सृष्टि का 'उ' उन्मेष अर्थात् मन्द क्रिया का संचार होता है। फिर 'ऊ' अर्थात् ऊर्मि अर्थात् क्रिया की तीव्रता होती है। इस प्रकार स पूर्ण सृष्टि और संहार का सांकेतिक वर्णन सूत्रों में निहित है।

आज का भौतिक विज्ञान जड़ विज्ञान है। वह अपना स पूर्ण क्रियाकलाप प्रत्यक्षप्रमाण से प्रेरित होकर करता है। माहेश्वर सूत्रों का स बन्ध सबसे पहले अध्यात्म अर्थात् सूक्ष्मतम फिर सूक्ष्मतर पुनः सूक्ष्म उसके बाद स्थूल तक पहुँचने का है। उसके पश्चात् विपरीत क्रम अर्थात् स्थूल से सूक्ष्म सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और फिर सूक्ष्मतम को प्राप्त कर उसमें स्वसत्ता को विलीन कर देने का है। यही मोक्ष या अपवर्ग है जिसके लिये स पूर्ण शास्त्र, सारी मानवता अनादिकाल से प्रयासरत है ॥

राधेश्याम चतुर्वेदी, पी-एच0डी0, प्रोफेसर, भाषा विभाग, संस्कृत अध्ययन केन्द्र, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, भारत ।

¹ गात्रविक्षेपणं नृतं नृत्यं ताललयाश्रितम्

Editorial

The journey of Dev Sanskriti Interdisciplinary International Journal (DSIIJ) is entering into a new year and we take this privilege to wish each one of you a happy and peaceful year ahead. May we all scale new spiritual heights and continue striving forward in integrating Science and Spirituality.

In this edition we bring you scholarly works from different streams offering a wide spectrum of spiritual and scientific learning. Ranging from physical and emotional health to cinema, from the identity of Indian woman portrayed by soap operas to the key features of Indian Psychology, from smart cities to heritage cities, the art of writing to the therapeutic effects of black pepper, from Universal brotherhood, to Human Resource Management in the light of teachings of Swami Vivekananda, and environmental orientation in the divine writings of famous poet and devotee Surdas; this edition is going to surely bring our understanding to new heights.

While the world faces an increase in the number of people suffering with asthma, and the modern medicinal inventions fall short of the expected results. Dr. Avnish Kumar & Dr. Kaushal Kumar draw our attention to Ethno-medicinal & Ayurvedic approach in the management and treatment of Asthma.

Among the International contributions, Dr. Roxanne Henkin *et al.*, share their reflections and insights on the teaching of writing.

Indian women hold a strong command and respect in the international fraternity. While the soap operas of Indian television project them in a different way, what is the true identity of an Indian woman? How does the Indian soap opera project Indian women and what are the implications of those myths and ideologies? Ms. Saraswati Das has dwelled upon these questions

in an attempt to exhibit the identity of Indian women as portrayed on Indian television.

Human resource is the key to run any organization. In the present day world, when the organizations are failing to manage human resources and align them towards a larger goal. Our next research paper explores the teachings of Swami Vivekananda - the ideals of śraddhā, love, compassion, renunciation of power, tolerance, positive thinking and swahridayta in Kapil K. Bhattacharyya's paper.

The goal of human life is to attain salvation. Each one of us is striving hard for happiness while dealing with our day to day challenges. Our own mind confuses us and sometimes even betrays us. Positive psychology is a relatively new field that examines how ordinary people can become happier and more fulfilled. Indian psychology is an approach based on Indian ethos. Dr. Priyanka attempts to explain how both Positive and Indian psychologies focus on human happiness, their unique strengths, and how the goals of Positive psychology can be achieved through Indian spiritual heritage.

The Indian government is campaigning for smart cities and working hard for a glorified future. Indian history also enjoys a rich heritage in its towns and cities. Ancient Indians had a well planned system of building villages and towns which is evident from archeological and literary sources. They had different designs and features with intricate drainage, water supply systems, markets, palaces, households and public spaces. Dr. R. Suresha, offers a glimpse of ancient Indian town planning for building modern smart cities

With the objective to bring forth the knowledge and information about Maricha (black pepper) in our classical texts, Dr. Bhavna Singh highlights the synonyms, pharmacodynamics, therapeutic actions, uses, and the different formulations of Maricha as described in ancient

Ayurvedic literature like Brihat trayi and Nighantus.

With what outlook should one construct, analyze, or dissect film theory? Should one view cinema as a medium of mass communication? Propaganda? Entertainment? Art? Or should cinema be considered a concoction of them all? In trying to formulate a film theory that deals with all these elementary characteristics poses a serious problem. Soumik Chatterjee advocates that it should be required for Indian cinema to be able to provide at least a level of generalization in answering the aforementioned questions, to be considered to have a theory of its own. This paper is an attempt to investigate whether or not such a generalization (subsequently, a film theory) is possible for Indian cinema, and then to find out how much of that theory is rooted in our original outlook towards the audio-visual art.

In a unique attempt, Dr. Sujata Chaturvedi explores the orientation and care for environment in the divine writings of famous poet Surdas, through the example of *Krishna-*

leela playing with animals and plants.

The feeling of nationalism connects individuals together and as a result it reduces crime, distrust, fights, unrest, etc. In the olden days, this was common and hence universal brotherhood was a common phenomenon. The Indian texts define the Sanskrit term *shastra* as Universe, not confined to a single nation. Dr. Indresh Pathik attempts to offer a solution to the present day problems by propagating this golden concept of universal brotherhood through his paper.

We would like to whole-heartedly congratulate and thank all the contributors and reviewers. We hope this issue will inspire and generate interest among researchers, educators, policy makers and professionals to understand the significance of indigenous knowledge in the present era. We would also like to thank all our readers and seek your feedback to make this journal a more effective vehicle of indigenous knowledge.